31

मेरे जीवन की चमत्कारिक घटनाएँ

बड़बीधा ग्राम की इजारे से मुक्ति एवं विक्रय

अब मैं अपनी मुख्य बात पर आता हूँ। इस घटना के प्राय 8-10 महीने बाद की बात है। एक गाँव का रुपये में नौ आना भाग मेरे पिताश्री रायसाहब के निजी 18 हजार रुपयों की एवज में नीलाम होकर मेरे पास आ गया। उस का सात आना भाग गाँव के चार पाँच अन्य किसानों द्वारा खरीदा जा चुका था। उन दिनों एक रुपये में 16 आने होते थे। परंतु वह सारा गाँव हम लोगों के बकाया रुपयों के पहले से 16 हजार रुपयों में उसी गाँव के एक धनी तेली के यहाँ दखली इजारे के रूप में गिरवी था। कानूनी रूप से हम उसके 16 हजार रुपये चुकाकर ही उस संपत्ति पर दखल पा सकते थे। मेरे दूसरे गाँवों के एक राजपूत कारिंदा अंबिका सिंह ने मुझसे कहा कि बाबू, गाँववाले चार-पाँच किसान भी उस तेली के चलते अपने नाम से सात आना गाँव नीलाम में लेकर भी अधिकार-वंचित है। आप कहिए तो मैं उन्हें मिलाकर पूरे गाँव पर दखल कर लूँ। तेली रामचरित्तर साव बहुत पैसेवाला था और हाथी भी पाले हुए था। गाँव में उसका रौबदाब भी बहुत था यद्यपि भीतर-भीतर गाँववाले उससे प्रसन्न नहीं थे। जिन गाँववालों ने 7 आना नीलाम करवा रक्खा था, वे सोलहों आने के 16 हजार रुपये कैसे देते! इसलिए वे भी मन मार कर चुप बैठे थे। मैंने अंबिका सिंह के साहस की परीक्षा लेने को अपनी स्वीकृति दे दी। फलतः अंबिका सिंह पूरी तैयारी के साथ गया और गाँववालों की सहायता से उसने पूरे गाँव पर दखल कर लिया। तेली के पास अदालत में जाने के सिवा कोई चारा नहीं था परंतु वह तो बहुत लंबी प्रक्रिया होती। मेरे पास बहुत पैसा न हो परंतु हम लोगों के परिवार का आतंक तो था ही। इस प्रकार मेरा उस गाँव पर यह अवैध अधिकार प्रायः दो वर्षों तक चला। आमदनी जितनी होती थी उससे अधिक व्यय गैरकानूनी अधिकार बनाये रखने में खर्च हो जाता था। मैं चाहता था कि 7 हजार गाँववालों से उनके हिस्से के लेकर और 9 हजार अपने

नौ आने के स्वामित्व के एवज में देकर उसके तेली का 16 हजार बकाया चुकाकर उस गाँव को दखलीइजारे से छुड़ा लिया जाय ताकि हमारा अधिकार वैध हो और हम उसे बेच सकें। गाँव में संदेश भेज दिया गया और 4-5 व्यक्ति जिनका अलग-अलग हिस्सा मिलकर 7 आना हिस्सा होता था रुपये लेकर पटना आ गये। वह गाँव पटना जिले में था और मैं भी 10 हजार नकद रुपये लेकर वहाँ अपने एक अन्य कर्मचारी सीताराम सिंह के साथ जा पहुँचा। गर्मी के दिन थे। हम लोग पटना की बिड़ला धर्मशाला में ठहरे थे। दखलीइजारे की शर्तों के अनुसार जेठ महीने में पूर्णिमा के पूर्व ही पूरे रुपये चुकाये जा सकते थे। वह तिथि बीत जाने पर फिर दूसरे वर्ष जेठ के महीने की प्रतीक्षा करनी होती। रुपये तो चुकाने को मेरे और गाँव वालों के पास तैयार ही थे परंतु 5-6 व्यक्तियों में नित्य किसी न किसी बात पर मतभेद हो जाता। तेली रामचरित्तरसाव भी पटना आकर बैठा हुआ था और शायद इस मतभेद में आँच दे रहा था। वह जानता था कि अवैध अधिकार रुपयों के बल पर अधिक नहीं चल सकेगा और अंत में उसी गाँव का निवासी होने के कारण, पचासों हजार की संपत्ति, वह गाँव, उसके सोलह हजार के बदले में उसीके पास रह जायगा। रुपये चुकाने की इस ऊहापोह में प्रायः एक सप्ताह बीत गया। नित्य कोई न कोई व्यक्ति विघ्न डाल देता। 5-7 व्यक्तियों में एक काना था जिसका शायद एकाध आना हिस्सा था। सबसे अधिक नुक्ताचीनी वही निकालता था। मैं गर्मी के दिनों में बिना पंखेवाले कमरे में 10 हजार के नोट कमर में बाँधे द्वार बंद करके सोता और पसीने में लथपथ हाथ के पंखे से हवा करता हुआ सारी रात करवटें बदलता रहता। उस पर मच्छरों का आतंक अलग। मेरा कर्मचारी आराम से बिड़ला पार्क की घास पर दरी बिछाकर खर्राटे भरता। पूर्णिमा की अवधि समाप्त होने में एक दो दिन की ही देर थी। यदि वह अवधि पार हो जाती तो रामचरित्तर साव तेली मुस्कुराता हुआ अपने घर लौट जाता और फिर मुझे अगले वर्ष तक उस गाँव पर अधिकार बनाये रखने में अपने पास से रुपये लुटाने पड़ते। मैं तंग आ चुका था परंतु यह प्रतिष्ठा का प्रश्न भी हो गया था। इसलिए मेरे लिए किसी भी तरह इस जाल से निकलना आवश्यक था और इसीलिए मैं एक सप्ताह से वह यातना भोग रहा था।

ऐसी परिस्थिति में, अवधि के पूर्ण होने के एक दो दिन पूर्व भोर में प्रायः चार बजे मेरी नींद खुल गयी। मैं मन में अपने अंतर्यामी से बातें करने लगा— 'तू मेरी हर बात जानता है। मैंने अपने प्रत्यक्ष मिलते हुए 22 हजार रुपयों को

ठोकर लगा दी कि किसीका रोयाँ नहीं दुखे। मेरे इस त्याग के बदले में तूने मेरी कोई खोज-खबर नहीं ली। क्या मानवता की रक्षा करने का मैंने ही ठेका लिया है! क्या उसके बदले में तेरी कोई जिम्मेदारी नहीं है कि ऐसे संकट में मेरी रक्षा करे! मैंने यहाँ क्या अपराध किया है जो पूरे रुपये हाथ में रहने पर भी गाँववालों में हरदम कोई न कोई व्यक्ति विघ्न डाल देता है। और वह काना तो सब से दुष्ट है। क्या तू गाँव वालों को कोई सत्प्रेरणा नहीं दे सकता कि वे मेरे साथ मिलकर रुपये जमा कर दें। रुपयों की कमी की बात होती तो भी मैं समझ सकता था। यहाँ तो केवल मतैक्य की बात है। थोड़ी-सी तेरी ओर से प्रेरणा मिलने की बात है।' मैं यह सोच ही रहा था कि दरवाजे पर दस्तक हुई। मेरी विचार-शृंखला टूट गयी और मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। दरवाजा खोलते ही मैंने देखा कि वे 5-6 गाँववाले खड़े हैं जिनमें सब से आगे वही काना था। उन्होंने एक स्वर से कहा, 'चलिये बाबू, अभी हम लोग उस दुष्ट तेली के रुपये जमा कर देते हैं। आप एक सप्ताह से इस छोटे से काम के लिए, जिसमें हमारा भी पूरा स्वार्थ सम्मिलित है, रुके हैं, यह हमारे लिए बड़ी लज्जा की बात है।' मैं अवाक् रह गया। तुरत सामने पार्क में सुख की नींद लेते हुए कर्मचारी को बुलवाया। वह भी प्रसन्नता से खिल पड़ा। सुबह की कचहरी थी। हम सब रुपये जमा करने कचहरी पहुँचे ही थे कि रामचरित्तर साव वकील को लेकर वहाँ द्वार पर ही मिला और बोला, 'मैं जान गया हूँ, आप मेरे नाम से रुपये जमा करने जा रहे हैं। कृपया वे रुपये सीधे मुझे ही दे दीजिए। मैं दखली इजारे का कागज लिये हूँ जिस पर वसूली दे दूँगा।' इस प्रकार मेरी उस विचार-धारा और परमात्मा के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने के आधे घंटे में सारा काम पूरा हो गया। यही नहीं गाँववालों ने कहा, 'आप तो गाँव को बेचना चाहेंगे।' मैंने कहाँ, 'हाँ पचास हजार रुपये पूरे गाँव का मूल्य लगाकर यदि मुझे अपने नौ आने की हिस्से के कोई तीस हजार भी दे दे तो मैं इसे बेच कर मुक्ति पा लूँगा।' उन 5-6 व्यक्तियों पर तो जैसे भूत सवार था। तुरत कागज बना और मुझे तीस हजार रुपये मिल गये। इस प्रकार जहाँ मैं 10 हजार लेकर पहुँचा था, वहाँ से 9 हजार चुकाकर और 31 हजार रुपये लेकर उसी दिन गया अपने घर लौट आया। इस घटना में बाहर से कोई चमत्कार न हो परंतु मेरी विचार-प्रक्रिया से इसका मेल देखने से तो स्पष्ट लगेगा कि मेरे मन की पीड़ा ने, या आत्मा की प्रेरणा ने अथवा घट-घटवासी उस परमात्मा ने मेरे आक्रोश व्यक्त करते ही सारी समस्या सुलझा दी। महेशसिंह का गाँव बेचने को जब मैं सारे कागज-पत्तर दे आया था तो उस

समय भी मेरे पिता के रूप में उस परम पिता ने मुझे एक अवांछित कर्म करने से बचाया था। मैंने सारी घटना सही-सही रूप में लिख दी है। इससे और लोग चाहे जो निष्कर्ष निकालें, मैंने तो यही निष्कर्ष निकाला है कि हमें अपने क्षणभंगुर जीवन के सुख-दुःख की बदलती हुई परिस्थितियों में अधीर होकर भगवान पर दोषापरोपण नहीं करना चाहिए। अर्जुन के लिए भगवान ने गीता के प्रारंभ में ही कह दिया है। **आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितीक्षस्व भारत**। यह कथन अर्जुन के निमित्त से उन सभी व्यक्तियों के लिए है जो भगवान को, उनके उपदेशानुसार, सारे फल सौंप देने को प्रयत्नशील हैं।

बस (जन-परिवहन-सेवा) का परमिट (आदेशपत्र) पाना

उपर्युक्त घटना में मैं सूक्ष्म चमत्कार मानता हूँ जिसमें दूसरों को मतभेद हो सकता है परंतु अब जिस घटना का मैं वर्णन करूँगा, उसमें वैसा ही प्रत्यक्ष चमत्कार है जैसा नरसी मेहता की हुंडी सिकारने में माना जाता है।

बिहार सरकार ने मेरी गया-हजारीबाग-रामगढ़ की बस-सेवा राष्ट्रीकरण द्वारा 1957 में समाप्त कर दी थी। सरकार की घोषणा थी कि विस्थापित बस-सेवा के स्वामियों को अधिकृत किये हुए मार्ग के स्थान पर दूसरे मार्गों पर, जहाँ राष्ट्रीकरण नहीं हुआ है, बस चलाने का आदेश-पत्र दे दिया जायगा। 1957 से 1969 तक मैंने बहुत बार ऐसे मार्गों के लिए आवेदन दिया परंतु **जहाँ बंदूक चलती है, वहाँ जादू नहीं चलता** के अनुसार, पैसों के नौबतखाने के सामने, जहाँ एक-एक बस परमिट के लिए पचास-पचास हजार की घूस की बोली लग रही हो, न्याय की तूती की आवाज़ कौन सुनता! अंत में 1969 में, प्रदेश में डिहरी से कर्मनासा मार्ग पर चलाने का आदेश-पत्र मुझे अकल्पित रूप से बिना एक पैसा खर्च किये कैसे प्राप्त हो गया, यह एक चमत्कार ही है। जब सरकार की ओर से जिन जिलों में बस का राष्ट्रीकरण नहीं किया गया था, उन जिलों में नयी बस सेवाओं की माँगे निकलती थीं तो एक या दो के लिए मैं सदा आवेदन अवश्य दे दिया करता था। मैं यह जानता था कि बिना घूस के यह काम नहीं हो सकता जिसके लिए मैं तैयार नहीं था, फिर भी कर्तव्य समझ कर या जुआरी की लत के समान आवेदन अवश्य भर देता था। इस बार भी उक्त मार्ग के लिए मैंने निष्काम भाव से फीस भरकर आवेदन दे दिया था। सुनवाई, गया नगर से दूर, बिहार की राजधानी पटना में होनेवाली थी।

उस सुनवाई में मेरे आवेदन पर विचार दूसरे दिन के लिए स्थगित हो गया। अनेक बार की असफलताओं के कारण मैंने सोचा कि मैंने आवेदन देकर

अपने कर्तव्य का पालन कर लिया है, होना-जाना तो कुछ है नहीं, क्यों मैं दूसरे नगर में रुकने का कष्ट उठाऊँ! यही सोचकर मैं गया की ट्रेन पकड़ने के लिए स्टेशन आ गया, परंतु टिकट लेकर गया की ट्रेन के प्लेटफार्म पर आने के बजाय मैं दूसरे विश्रामालय वाले प्लेटफार्म पर चला आया। सामने विश्रामालय देखकर मैंने सोचा कि टिकट के पैसे बरबाद भी हों तो हों, अब कल की मीटिंग भी देख ही ली जाय और उस विश्रामालय में विश्राम करने चला गया। दूसरे दिन मीटिंग में सभी सदस्य एक उच्च सरकारी अधिकारी के भानजे को वह बस की लाइन देने को प्रतिबद्ध थे। राज्य में गर्वनर-शासन था जिसमें मुख्यसचिव मुख्यमंत्री के समान होता है और उसीके भानजे का प्रश्न था। मेरी पुकार होने पर मैंने कहा 'मेरी गया नगर की 'बिजली सप्लाई कंपनी' सरकार ने ले ली। मेरे गाँव सरकार की जमींदारी-उन्मूलन- योजना में ले लिए गये। गया-हजारीबाग-रामगढ़ की मेरी बस-सेवा का राष्ट्रीकरण कर लिया गया। अपने ही प्रदेश में मुझे विस्थापित बना दिया गया और सरकार ने अपनी घोषणा के अनुसार मेरी बस लाइन के बदले में निरंतर आवेदन करते रहने पर भी दो-चार मील के भी परिवहन हेतु कोई मार्ग मुझे नहीं दिया जहाँ मैं बस नहीं तो बैलगाड़ी ही चला सकूँ।' मुझसे विस्थापित का प्रमाणपत्र माँगा गया, परंतु वह तो 12-13 वर्ष से निरंतर असफल रहने के कारण और आवेदन देकर मीटिंगों में बारबार ले जाने के कारण कहीं खो गया था। अतः उन्हें मैंने विभाग का रेकार्ड देखने को कहा कि वे जाँच कर लें, मेरी बात सत्य है या नहीं। मेरे विस्थापित बसस्वामी होने की हामी मीटिंग में बैठे एक पुराने वरिष्ठ अधिकारी ने कर दी। अपनी बात कहकर मैं बाहर आ गया और उसी समय स्टेशन आकर गया की ट्रेन पकड़कर अपने नगर में लौट आया। दूसरे दिन यह अफवाह सुनकर कि वह लाइन मुझे मिल गयी है मैं पूरी स्थिति जानने को पटना आया। वहाँ दफ्तर के बड़े बाबू ने मुझे बताया कि वह लाइन मुख्य सचिव के भानजे को देने को सभी सदस्य प्रतिबद्ध थे परंतु औचित्य के प्रश्न पर एक सदस्य के अड़ जाने से वह आपको मिल गयी है। परंतु सदस्यों ने मुख्य सचिव से अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए, क्योंकि गर्वनरी शासन में मुख्य सचिव ही सर्वेसर्वा होता है, उसमें 15 दिन की शर्त लगा दी है। आप 15 दिनों में अपनी नयी बस प्रस्तुत नहीं करेंगे तो वह लाइन स्वतः उस अधिकारी के संबंधी की हो जायगी। आप पूछने में समय नष्ट करने पटना क्यों आये हैं! 15 दिनों में 2 दिनों का समय निकल चुका था। इस अवधि में नयी चेसिस कलकत्ता जा कर खरीदना,

उसपर यात्रियों को ढोनेवाली बॉडी बनवाना और उसे सेवा के उपयुक्त पास कराकर सेल्स टैक्स क्लियरेंस आदि के उसके कागजात पूरे करके पटना में लाना एक असंभव-सा कार्य था। जिसके लिए मेरी जेब में केवल 60 रुपये नकद थे। परंतु मुझ पर तो जैसे नशा चढ़ गया था। 13 वर्ष के बाद पहली बार एक आदेश-पत्र मिल सकने की आशा बँधी थी। जेब में पड़ी बैंक की पासबुक में यद्यपि सौ-दो-सौ से अधिक रुपये जमा नहीं थे फिर भी पास में इतने रुपये थे कि मैं पटना से कोलकाता जाकर गया लौट सकूँ। हायर-परचेज की कंपनियाँ, जो चेसिस पर ब्याज पर रुपये प्रदान करती थीं, सभी कोलकाता में थीं। मैं बिना एक क्षण का भी विलंब किये, किसी हायर-परचेज कंपनी द्वारा बस की चेसिस खरीदने के विचार से उसी रात को पटना से रवाना होकर दूसरे दिन सुबह कोलकाता जा पहुँचा। वहाँ स्नान-ध्यान से निश्चिंत होकर मैंने सोचा कि 10 बजे चेसिस की खरीद कराने के लिए किसी हायर-परचेज कंपनी को ढूँढा जायगा तब तक कहीं बाजार में चाय-पान कर लिया जाय। मैं कलकाता के बड़ाबाजार नामक स्थान में अपने भानजे की गद्दी में ठहरा था। मैं जलपान के लिए ज्यों ही एक गली पार करके मुड़ा, रामेश्वर चौधरीजी से, जो मेरे घनिष्ठ मित्र और दूर के संबंधी भी थे, भेंट हो गयी। हालचाल पूछने पर मैंने बस का परमिट मिलने की सारी बातें उन्हें बता दी और कहा कि मुझे हायर-परचेजवाली कोई कंपनी ढूँढनी है जो तुरंत चेसिस दिलवा दे क्योंकि मेरे पास केवल 12-13 दिनों की अवधि शेष है। उन्होंने कहा, 'चलो मैं तुम्हारे साथ हायर परचेज कंपनी ढूँढने चलता हूँ।' अंत में दिनभर भूखे-प्यासे हम दोनों व्यक्ति विभिन्न कंपनियों के दफ्तरों की खाक छानते रहे। बिहार में कोई रुपये लगाने को तैयार ही नहीं होता था। मैं अपने मारवाड़ी होने की लाख दुहाई देता था, परंतु बिहार के कटु अनुभव के कारण कोई सीधे मुँह बात भी नहीं करता था। अंत में रात के 7 बजे चौधरीजी की अपनी दुकान के निकट ही एक कंपनी रुपये उधार देने को तैयार हो गयी। उसके पास टाटानगर में एक चेसिस भी थी। कंपनी के स्वामी ने कहा कि टाटा कंपनी की टाटा नगर में उनकी जो एक चेसिस है उसका मूल्य कल से 12500 बढ़ ज़ायगा। आज ही सौदा होने से वह 48500 के स्थान पर 33000 में मिल जायगी। मैंने कहा, 'मैं तो तैयार हूँ' और हायर-परचेज की शर्तों के अनुसार 33 प्रतिशत जो मुझे अपने पास से देने थे, उसके लिए अपनी चेकबुक निकाली। बैंक में रुपये न होने पर भी मैंने सोचा कि जब तक बैंक की मारफत चेक गया पहुँचेगा, मैं कोई न कोई प्रबंध करके अपने खाते में रुपये

जमा करा दूँगा। परंतु कंपनी का मालिक, जो बहुत घाघ मारवाड़ी था, बोला, 'पेशगी की रकम हम नकद लेते हैं।' मैं कुछ बोलूँ इसके पूर्व ही चौधरीजी मेरी ओर मुड़कर बोले 'जाओ भाई, जल्दी से मेरी गद्दी से पंद्रह हजार रुपये ले आओ।' मैं भागा-भागा उनकी दुकान पर पहुँचा और बिना गिने पंद्रह हजार की गड्डी मुनीम से लेकर आ गया। टेलीफोन से टाटानगर को विक्रय की सूचना दे दी गयी। अब बोडी बनाने की समस्या थी। मुझे चेसिस के स्वामी ने यह बताया कि कोलकाता में कोई 10-12 दिन में बस की बोडी नहीं बना सकेगा और बनाने का वादा कर भी दे तो वह उसे पूरा न कर सकेगा। अंत में उसी समय मैंने उनके द्वारा बतायी दिल्ली में ढिल्लन कंपनी नामक एक कंपनी का फोन मिलाया जो तुरत मिल गया। उसके स्वामी से मैंने अपनी 10 दिन में बोडी बनाने की बात कही तो वह बोला कि हमारे यहाँ तो 10 दिनों में बोडी बनकर खड़ी रहेगी। देर करने से तो हमारा सारा काम ठप हो जायगा। यह आपकी इच्छा पर है कि आप कब ले जाते हैं।' अंधा क्या चाहे, दो आँखें। मैंने उससे कहा कि मैं चेसिस तुरत भेज रहा हूँ। बोडी के लिए पेशगी के रुपयों के संबंध में पूछने पर उसने कहा 'आपकी पचास हजार की चेसिस हमारे पास रहेगी, इसके अतिरिक्त और पेशगी क्या चाहिए!' 14500 रुपये की रकम, बाडी की बनवाई, गाड़ी वहाँ से लाते समय चुकानी थी जिसका प्रबंध करने के लिए मेरे पास यथेष्ट समय था। इस प्रकार सारा काम बिना किसी साधन के भगवान की कृपा से पूरा करके और टाटानगर से चेसिस के दिल्ली आने-जाने का परमिट बनवा कर उसे गया भेजने का आदेश दिलवा कर, उसी रात रवाना होकर मैं गया लौट आया। गया से अपने ड्राइवर द्वारा चेसिस को दिल्ली भेजना था और चूंकि गया नगर टाटानगर और दिल्ली के बीच में पड़ता है, इसलिए इसमें विलंब होने की संभावना भी नहीं थी। गया पहुँचकर मैंने देखा कि चेसिस द्वार पर खड़ी है। कलकत्ता में 11500 चेसिस के ऐडवांस के देकर मेरे पास पंद्रह हजार में भी 3500 बच गये थे। चौधरीजी ने वे रुपये मुझे रखने को कहकर अपने पास के पाँच हजार रुपये और मुझे यह कहकर पकड़ा दिये कि बॉडी की कीमत चुकाने में और अन्य कामों में रुपयों की बहुत जरूरत पड़ सकती है। ये सब रुपये मुझे बस चालू होने के बाद ही भेजना। इस प्रकार चेसिस भी मिल गयी और उसकी बॉडी का 14500 का मूल्य चुकाने के लिए मेरे पास नकद 8500 भी आ गये। अब केवल 6 हजार रुपये का प्रबंध गया में और करना था। अपने पुत्र डॉ. आनंद को, जो उस समय कालेज में पढ़ता था, मैंने रुगल महाराज

नामक एक अपने पुराने ड्राइवर के साथ कुछ रुपये देकर चेसिस के साथ दिल्ली रवाना कर दिया। उसी दिन दोपहर में मैं एक रिश्तेदार से, जिसे मैंने गाढ़े समय में 1500 उधार दिये थे, अपने रुपये माँगने उसके घर गया। उसने टका-सा जवाब दे दिया। मैं शेक्सपियर की कविता **Blow, blow, thou winter wind. Thon art not so unkind as man's ingratitude** तथा रहीम के दोहों को मन ही मन दुहराता विचार-मग्न लौट रहा था कि मेरे एक पुराने कर्मचारी भागीरथ शर्मा ने मुझे पुकारा। वह बचपन से मेरे यहाँ काम करता था और बस-लाइन के राष्ट्रीकरण के बाद से काम छुट जाने पर स्वतंत्र व्यापार करके लाखों का स्वामी हो गया था। लौटते समय मैं उसके बुलाने से उसकी दुकान पर चला गया और चाय आदि आने के पूर्व बात ही बात में उससे मैंने बस के परमिट मिलने की बात कह दी तथा यह बताया कि मुझे बॉडी बनवाकर बस 10 दिनों के अंदर-अंदर दिल्ली से लानी है जिसके लिए 6 हजार रुपयों की कमी-पूर्ति के लिए मैं अपनी बकाया राशि लेने जिस संबंधी के यहाँ गया था उसने मुझे टका-सा जवाब दे दिया है। भागीरथ ने उठकर तुरत आलमारी से नंबरी नोटों की गड्डी निकाली और 6 हजार रुपये गिनकर मुझे पकड़ा दिये।

ऊपर की सारी गाथा बताने का एक ही उद्देश्य यह बताना है कि किस प्रकार भगवत् प्रेरणा से मैं बिना चाहते हुए पटना में रुक गया और किस प्रकार बिना एक पैसा भी पास में रहे, बस के 15 दिनों की निर्धारित अवधि में प्रस्तुत करने की मेरी भूमिका बन गयी। बिना यह जाने, आगे की चमत्कारवाली बात, जो मैं बताने जा रहा हूँ, पूरी तरह स्पष्ट नहीं होगी।

ठीक 8 दिन के बाद, मैं रुपये लेकर बस की डिलीवरी लेने गया से दिल्ली पहुँचा जहाँ मेरा पुत्र आनंद और ड्राइवर बस को तैयार करवाकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। रुपये अदा करके और बस में पेट्रौल भराकर हम तुरत दिल्ली से बरेली-लखनऊ के मार्ग से बिहार के डिहरी नगर के लिए रवाना हुए जहाँ की पुलिस-आफिस से बस को पास कराकर उसके कागजात लेने थे जिनको दिखाने पर बस चलाने का आदेश-पत्र मिलता। वह पटना से मिलनेवाला था। दिल्ली से चलकर बरेली से होती हुई हमारी बस सीतापुर नगर से निकल ही रही थी कि राज्य के परिवहन अधिकारी ने भोर के समय गाड़ी रोकी और दिल्ली से बिहार की ओर जाने का अस्थायी परमिट आदि देखने को माँगे। मैंने लेटे-लेटे ड्राइवर की मारफत अस्थाथी परमिट और गाड़ी की औनरबुक भेज दी। ड्राइवर ने लौटकर बताया कि अधिकारी बस को जब्त कर रहा है क्योंकि बस का

टाटानगर से दिल्ली आने और जाने का जो अस्थायी परमिट मिला था उसमें दिल्ली के स्थान पर डिहरी लिखा था। यह स्पष्ट रूप से टाटानगर के किरानी की भूल थी जिसने दिल्ली के स्थान पर डिहरी लिख दिया था। डिहरी के स्थान पर टाटानगर से दिल्ली जाने-आने का भी अस्थायी परमिट होता तो फीस वही 12 रुपये लगनी थी। अतः मेरी ओर से जानबूझकर दिल्ली के स्थान पर डिहरी आने-जाने का अस्थायी आदेशपत्र लेने की चेष्टा का प्रश्न ही नहीं उठता था। इसमें कोई रुपये बचाने का प्रलोभन नहीं था। बस में कोई भाड़े की सवारी भी नहीं थी अतः मेरा कहीं से भी कोई नैतिक अपराध नहीं बनता था। मात्र किरानी की छोटी सी भूल थी, परंतु उस भूल के कारण मेरी बस सीतापुर में बिना परमिट की बन गयी और जब्त करके उसे सीतापुर के पुलिसथाने में खड़ा कर दिया गया। अधिकारी ने नियम का पालन किया था परंतु उसे मेरे प्रति सहानुभूति थी। उसने कहा, 'आप यह कागज लेकर लखनऊ की कचहरी में जायँ और वकील की मारफत अपनी जमानत लेकर उसे आज ही मुक्त करवा लें नहीं तो कल से 15 दिन तक कचहरी बंद रहेगी और यह बस मुक्त नहीं हो सकेगी। मैंने अपने पुत्र को तो पुलिस थाने में बस की सुरक्षा के लिए छोड़ दिया और ड्राइवर को लेकर एक भाड़े की बस से लखनऊ पहुँचा। वहाँ मैंने अपने एक संबंधी से दो सौ रुपये कचहरी के व्यय के हेतु लिये क्योंकि गाड़ी में पूरा पेट्रौल भराने के बाद मेरे पास पैसे कम पड़ गये थे और इसीलिए मैं अपनी ससुराल प्रतापगढ़ होता हुआ जा रहा था। जमानत के लिए मेरे एक अन्य संबंधी लखनऊ की 'आनंद सिनेमा' के स्वामी आनंदबिहारीजी ने अपना मैनेजर मेरे साथ कर दिया। वह मैनेजर बड़े अधिकार से बोला 'सभी मजिस्ट्रेट मेरे परिचित हैं क्योंकि मैं उन्हें सिनेमा मुफ्त दिखाता हूँ। आप चिंता न करें। टिफिन के समय मैं उससे बोल दूंगा और तुरत जमानत हो जायगी। आप केवल एक वकील अपने लिए नियुक्त कर लें।' मैंने वैसा ही किया और वकील को दो बजे लंच आवर के बाद दरखास्त पेश करने का निर्देश दिया।

आवेदन पत्र आदि तैयार कराते-कराते दो घंटे बात की बात में बीत गये। टिफिन के बाद वकील ने जब दरखास्त मजिस्ट्रेट के आगे बढ़ायी तो उन्होंने आदेश दिया कि पाँच-पाँच हजार की दो जमानतें लेकर गाड़ी मुक्त कर दी जाय। एक जमानत को तो मैनेजर साहब अपनी मोटर सायकिल लेकर उपस्थित ही थे, दूसरे की तलाश करनी थी। वे बोले कि मैं दूसरे किसी व्यक्ति को ढूँढकर लाता हूँ। उनके आते-आते संध्या के चार बज गये और जब तक वे एक व्यक्ति

को लेकर आये, हाकिम अदालत का काम निपटाकर जा चुके थे। चूंकि अदालत 15 दिनों के लिए चुनाव के कारण बंद हो रही थी, उन्हें घर जाने की जल्दी थी। यों भी बंदी के वातावरण के कारण अदालत में भीड़-भाड़ नहीं थी। मेरे वकील ने कहा 'लालाजी, हाकिम जा चुके हैं, इसलिए अब आज कोई काम नहीं हो सकता। अब तो 15 दिनों बाद अदालत खुलने से ही गाड़ी मुक्त हो सकेगी। अब मैं भी जाता हूँ।' मैंने उन्हें फीस के 50 रुपये पहले ही पकड़ा दिये थे इसलिए उन्हें रुकने में कोई लाभ भी नहीं था। मै उनसे कह ही क्या सकता था ! इसके बाद सिनेमा के मैनेजर साहब जिस व्यक्ति को दूसरी जमानत के लिए लेकर आये थे वह भी खिसक गया। मैनेजर साहब बोले 'लालाजी, मेरा सिनेमा का टाइम हो गया। अब तो 15 दिन बाद ही कुछ होगा। मैं भी जाता हूँ।' मैंने उनसे व्यंग्यपूर्वक कहा - 'अवश्य जाइए। अब आपकी क्या आवश्यकता है, जब हाकिम ही नहीं है।' यदि उन्होंने मुझे टिफिन तक दरखास्त देने से न रोक दिया होता तो मैं 10 बजे ही दरखास्त देकर जमानतदारों को लाने को यथेष्ट समय पा सकता था परंतु अब क्या हो सकता था, जब चिड़िया चुग गयी खेत! मैनेजर साहब भी चल दिये। जाड़े के दिन थे इसलिए जल्दी ही अदालत के कक्ष में अँधेरा छाने लगा। पेशकार भी अपने कागज पत्र सँभाल कर उन्हें अलमारी में बंद करते हुए अदालत का कमरा बंद करके चलता बना। जाते-जाते वह यह भी फिकरा कसता गया कि अब जो कुछ होना है 15 दिन के बाद ही होगा क्योंकि सभी अदालतें चुनाव के कारण 15 दिन तक बंद रहेंगी। अदालत के सारे हाते में, मैं, मेरा ड्राइवर और एक बूढ़े चौकीदार के सिवा एक चिड़िया का पूत भी नज़र नहीं आता था। सर्दियों के दिन थे। अँधेरा और भी गहरा हो गया। बूढ़ा चौकीदार एक खंभे के सहारे टिका बैठा था जब कि मैं और ड्राइवर अलग अलग खंभों के सहारे आसपास खड़े थे। ड्राइवर ने पूछा 'बाबू क्या होगा।' मैंने कहा कि होगा क्या, मेरी गाड़ी मुक्त होगी। मैं सोच रहा था कि भगवान मेरे साथ इस तरह विनोद नहीं कर सकते। बिना किसी साधन और प्रयास के 13 वर्ष बाद यह बस की लाइन मुझे दिलाना, बिना एक भी पैसा पास में रहे 15 हजार की अग्रिम राशि की रकम और बस का, अवधि की असंभव लगनेवाली सीमा के भीतर, प्रबंध करा देना और फिर बिना मेरी ओर से किसी लोभ या अन्य प्रकार के दोष के एक किरानी की मूर्खता के कारण यह सारा खेल समाप्त करा देना, यह वे कैसे कर सकते हैं ! मेरे मन में सारी संभावनाओं और वास्तविकताओं के विरुद्ध यह विचार दृढ़ीभूत हो गया कि कोई

न कोई दैवी चमत्कार होगा और मेरी बस की मुक्ति का कागज मुझे मिल जायगा। सारे-दिन भागदौड़ और मानसिक व्यस्तता के कारण सुबह से मुझे और मेरे ड्राइवर को चाय तक पीने का अवकाश भी नहीं मिल सका था। परंतु इस कठिन परिस्थिति में खाने-पीने की किसे सूझती ! मेरे ड्राइवर ने फिर पूछा 'बाबू, गाड़ी कैसे छूटेगी ! अदालत तो बंद हो चुकी।' मैंने दृढ़ता से कहा 'रुगल महाराज, (ड्राइवर का नाम) तुम अपने मन में भगवान का स्मरण करते हुए देखते जाओ। गाड़ी छूटकर रहेगी।' समय बीतता जा रहा था। देखते-देखते रात के आठ बज गये। पास में ऊँघ रहे चपरासी ने कहा 'बाबू, आपकी गाड़ी छूट जायगी।' वह बेचारा कुछ पाने के लालच से मेरी हाँ-में-हाँ मिला रहा था यद्यपि मन-ही-मन वह भी मेरी मूर्खता पर हँस रहा होगा। अब अँधेरा इतना गहरा हो गया था कि हम लोग एक दूसरे को ठीक से देख भी नहीं पा रहे थे। सर्दियों के दिन में रात के 8-9 बजे यों भी सन्नाटा हो जाता है। उस समय की अपनी दृढ़ आस्था की बात सोचकर मुझे आज आश्चर्य में डूब जाना पड़ता है। कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी रात में अदालत में खड़े रहकर गाड़ी के छूटने की आशा लगाये नहीं रह सकता था। ड्राइवर ने जब फिर पूछा 'बाबू, कैसे छूटेगी।' तो मैंने फिर उसी दृढ़ता से उत्तर दिया 'यह मैं नहीं जानता इसलिए यहाँ चुपचाप खड़ा हूँ। कही न कहीं से कोई सहायता भगवान अवश्य करेंगे। यदि गाड़ी नहीं छूटी तो गाड़ी में लगायी हुई सारी रकम मेरे गले की फाँसी हो जायगी। बस चलाने का व्यापार अलग हाथ से निकल जायगा। ऐसा कैसे हो सकता है! मेरा तो कहीं कोई दोष : हीं है।' सही अर्थों में तो भौतिक परिस्थियों के विरुद्ध यह मेरा सत्याग्रह ही था। सत्याग्रह तभी सफल होता है जब, आपकी अपनी ओर से, सत्य का पूरा आग्रह हो। उस कसौटी पर, अपनी समझ में, मैं यहाँ खरा था। और आधा घंटा बीत गया। न तो खड़े-खड़े मेरे पाँव थके, न पेट में भूख का ही अनुभव हुआ। मुझे केवल यहीं धुन थी कि गाड़ी तो छूटनी ही है, कैसे छूटेगी इसका पता नहीं है अतः यहीं चुपचाप खड़े रहना है। मैं आगे की सारी बागडोर उस अदृश्य सत्ता के हाथ में सौपकर एक प्रकार से निश्चिंत-सा था। मैंने ऐसी ही आस्था के विषय में एक रुबाई में लिखा था —

दुःख कुछ हँसके झेलता हूँ मैं
कुछ स्वरों में उडेलता हूँ मैं
खेलती जैसे लहर सागर में
गोद में उसकी खेलता हूँ मैं

मुझे यह भी होश नहीं था कि मैं अपने किशोर पुत्र को, जिसे मैं 60 मील दूर सीतापुर में छोड़ आया हूँ, उसका क्या हाल हो रहा होगा। रुपयों की कमी से मैं केवल दो रुपये उसे देकर लखनऊ आ गया था। एक प्रकार से मैं ऐसी स्थिति में आ चुका था कि पूरा निर्णय भगवान के हाथों में सौंप कर भी उस विषम परिस्थिति में निराश होने के सिवा मेरे पास कोई चारा ही नहीं था। फिर भी मैं पूर्णतः आश्वस्त था कि गाड़ी मुक्त होकर रहेगी। क्या यह चमत्कार नहीं है।

परंतु चमत्कार तो अभी होना था। प्रायः 9 बजे रात के लगभग एक कार की रोशनी हमारी ओर आती हुई दिखाई दी। लखनऊ की अदालत इस प्रकार अवस्थित है कि उसके चारों ओर सड़कें हैं। स्टेशन से एक फिएट कार पर एक वकील ट्रेन छूट जाने के कारण घर लौट रहे थे। गाड़ी अदालत की बाहरी सड़क पर घूमी तो उसके प्रकाश में उन्हें अदालत के अहाते में खंभे के सहारे दो मानवमूर्तियाँ दिखाई दीं। फौजदारी के वकील होने के कारण उन्हें बहुत संदेह और कुतूहल हुआ कि इतनी रात गये अदालत में कौन व्यक्ति खड़ा रह सकता है। वे गाड़ी अदालत के अहाते में ले आये और उसे खड़ी करके हमारे पास चले आये। उनके साथ एक और सज्जन थे जो गाड़ी में ही बैठे रहे। वकील साहब का पूरा नाम तो याद नहीं पर वे सिक्ख थे और उनका आगे का नाम 'सूरी' था। उन्होंने आते ही मेरी सभ्य वेशभूषा देखकर कहा 'लालाजी, आप इतनी रात गये कचहरी में क्या कर रहे हैं और यह आपके साथ दूसरा व्यक्ति कौन है?' मैंने पूरी घटना आद्यंत उन्हें सुना दी और बता दिया कि गाड़ी छुड़वाकर परमिट लेने में केवल 2-3 दिन की अवधि और मेरे पास बची है। किसी भी हालत में गाड़ी मुक्त कराने की आशा लगाये, मैं यहाँ खड़ा हूँ क्योंकि मैं नहीं जानता, मेरी गाड़ी कैसे छूटेगी और कहाँ जाऊँ। मैंने जो वकील रक्खा था, वह भी चलता बना। मेरे लिए तो यह लाख रुपये की बाजी है और एक प्रकार से जीवन-मरण का प्रश्न है। सूरी साहब को मेरी स्थिति पर तरस आ गया। छूटते ही बोले 'लालाजी, आप नाहक परेशान होते है, मैं आपको गाड़ी मुक्त कराने का आदेशपत्र देता हूँ। मुझे पचास रुपये दीजिए और मेरे साथ चलिए।' मैंने तुरत उन्हें पचास रुपये पकड़ा दिये और ड्राइवर से धीरे से कहा 'रुगल महाराज, यहीं खड़े रहना। हो सकता है, यह कोई ठग हो, परंतु जो भी भगवान रास्ता दिखाते जायँगे, उस पर चलते जाना है। मैं इनके साथ जा रहा हूँ।' गाड़ी में सूरी साहब ने मुझे बताया कि वे एक खून के मुकदमे में उस मुवक्किल के साथ, जो उनकी बगल में बैठा था, बहस करने कानपुर जानेवाले

थे, परंतु गाड़ी छूट जाने से, यह सोचकर घर लौट रहे थे कि भोर की कानपुर की ट्रेन पकड़ेंगे। अदालत में, जो उनके घर के रास्ते पर थी, दो मानव-मूर्तियों को देखकर वे अदालत के अहाते के अंदर आ गये थे। उन्होंने कहा 'चलिए, हाकिम के घर पर चलकर गाड़ी के मुक्ति के कागज पर हस्ताक्षर करवा देता हूँ और आपको गाड़ी की मुक्ति का आदेशपत्र दिलाता हूँ।' गाड़ी की मुक्ति का एक छपा हुआ फार्म उनकी बेग में था जिसे उन्होंने गाड़ी में ही भर लिया। एकाएक उन्होंने कहा, 'पहले पेशकार को भी तो घर से लेना होगा क्योंकि अदालत की मुहर उसीकी जानकारी में रक्खी होगी और वही लगायेगा। हम पेशकार के घर की ओर जा ही रहे थे कि एक स्थान पर एक सिनेमाहाउस की भीड़ के कारण गाड़ी की रफ्तार थोड़ी धीमी हो गयी। एकाएक सूरी साहब गाड़ी की रोशनी में सामने एक व्यक्ति को नाली पर ऊकड़ूँ बैठे देखकर चिल्ला उठे, 'अरे आपकी अदालत का पेशकार ही तो पेशाब करने बैठा है और गाड़ी रोक दी। उस व्यक्ति के, जो पेशकार ही था, उठते ही उन्होंने उसे पुकारा। वह सिनेमा देखने आया था और इंटरवल में बाहर निकल कर पेशाब कर रहा था। सूरी साहब ने कहा 'आओ, मेरे साथ मोटर में बैठकर साहब के घर पर चलो। लालाजी दिन भर से परेशान हैं।' वह बोला 'मेरी पिक्चर आधी देखी हुई है।' सूरी साहब ने डाँटा 'तुम्हें पिक्चर की पड़ी है, यहाँ लाख रुपये की बाजी लगी है।' फिर मेरी ओर मुड़कर कहा 'लालाजी, इसे पाँच रुपये कल पुनः इस पिक्चर को देखने को दे दीजिए।' पेशकार को लेकर हम चले ही थे कि फिर सूरी साहब ने कहा 'दो व्यक्तियों के जमानत के रूप में हस्ताक्षर भी तो कराने हैं। कोई भी दो व्यक्ति दस्तखत कर दें। पेशकार से सही मैं करवा देता हूँ।' मोटर मैंने अपने संबंधी के निवास की ओर मुड़वायी और उनके दो कर्मचारियों के दस्तखत जमानत के कागज पर करवा लिये जो जमानती का कागज भी सूरी साहब की बेग में ही था। हाकिम के घर के बाहर गाड़ी खड़ी करके सूरी साहब ने पेशकार को कागज देकर आदेशपूर्ण स्वर में कहा 'जाओ, हाकिम से मुक्तिपत्र पर दस्तखत करा लाओ।' पेशकार गया और काफी समय बीत गया पर लौटा नहीं। अब मेरा माथा ठनका। मैंने विनम्रता से सूरी साहब से कहा, 'आप ही अंदर जाकर दस्तखत करा लाइये न।' सूरी साहब बोले 'लालाजी, मेरे जाने से आधा घंटा समय नष्ट हो जायगा। हाकिम बिना चायपान कराये मुझे आने नहीं देगा। आपके लिए एक-एक क्षण का महत्त्व है। सीतापुर की आखिरी बस 10 बजे खुल जाती है। आपका लड़का बस पर अकेला बैठा है।' मैं चुप हो गया।

फिर 10 मिनट बीत गये। पेशकार नहीं आया। फिर मैंने आजिजी से कहा, 'लगता है कोई विघ्न आ गया है। आप ही जाते तो अच्छा होता।' अंत में सूरी साहब मोटर से निकल कर हाकिम के मकान के अहाते में घुसने ही वाले थे कि पेशकार हाकिम का दस्तखत किया हुआ मुक्तिपत्र लेकर वापस आता हुआ उन्हें द्वार पर मिल गया। वे झपट कर गाड़ी के पास आ गये और मुक्तिपत्र मुझे देते हुए बोले 'लालाजी, बच गये। यदि वह मूजी मुझे देख लेता तो आपका आधा घंटा समय बरबाद हो जाता और सीतापुर की बस छूट जाती।' मुक्तिपत्र हाथ में लेकर और उलट-पुलटकर और उसकी मुहर और दस्तखत देखकर भी मुझे सहसा विश्वास नहीं हो रहा था। परंतु यह सत्य था और निस्संदेह परमात्मा का चमत्कार ही था जो मेरी अनन्यता के कारण हो सका था। रामायण में कहा है -

समदरशी मोहि कह सब कोऊ

सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ

क्या मेरी वही अनन्य गति नहीं हो गयी थी ! बीच सागर में यदि नाव डूबने लगे तो सिवा उस परम पुरुष के और कौन बचा सकता है! मेरी दृढ़ आस्था ने यह किया या भगवान को मुझ पर तरस आ गया अथवा मेरे पूर्व पुण्य के प्रताप से यह संभव हुआ, कहा नहीं जा सकता परंतु चमत्कार तो कहा ही जायगा। इतने सारे संयोंगों का एक साथ मिलना भी तो चमत्कार ही है। मेरा गया की ट्रेन के प्लेटफार्म के बजाय दूसरे प्लेटफार्म पर भटककर विश्रामालय में पहुँच जाना, आरा के एक अपरिचित एस. पी. का, जो चयन-समिति का सदस्य था और जो मुझे जानता भी नहीं था, मेरी वकालत करके बड़े-बड़े अधिकारियों से लड़कर मुझे बस को चलाने के आदेश का प्रस्ताव करवाना, कोलकाता में अकस्मात रामेश्वरजी चौधरी का मिलना, बस और बस की बॉड़ी का तथा रुपयों का स्वतः प्रबंध होते जाना, ये सब ऐसी बातें थीं जो मुझमें यह भावना दृढ़ कर गयी थीं कि यह बस और उसका आदेश-पत्र भगवान मुझे दस वर्ष के बाद दिलवाने की भूमिका ही क्यों बनाते यदि उन्हें, मेरी ओर से बिना किसी त्रुटि या प्रलोभन के, आदेश-पत्र नहीं दिलवाना था। भगवान मेरे साथ ऐसी निष्ठुरता या विनोद नहीं कर सकते।

उसके बाद मेरे ड्राइवर को अदालत से लेकर और सीतापुर को जाती हुई आखिरी बस को रोककर सूरी साहब ने मुझे विदा किया तथा कह दिया कि अब अपने शहर जाकर आप दो सौ रुपये भेज देंगे, मैं अदालत का जुर्माना आदि देकर मुकदमा खत्म करा दूगा जो उन्होंने बाद में कर भी दिया। कचहरी से मुक्ति पत्र का आदेश पाकर भी मैं इस चिंता में था कि अब थाने के दरोगा से

गाड़ी प्राप्त करनी है जिसके लिए मेरे पास कुल करी 80-90 रुपयों की पूँजी बची थी जो इस कार्य के लिए सर्वथा अपर्याप्त थी। परंतु थाने के दरोगा ने जो व्यवहार किया वह सर्वथा अकल्पित था। वह और उसके तीन-चार मातहत कर्मचारी सभी जैसे मेरी प्रतीक्षा में बैठे थे। उसने रुपयों के देनलेन की तो चर्चा ही नहीं की, मेरे प्रति अत्यंत सहृदयता का बर्ताव करते हुए मुझे विशिष्ट अतिथि की तरह विदा किया।

इसके बाद की घटनाएँ चमत्कार पूर्ण तो वैसी नहीं हैं परंतु उनमें उपन्यास की-सी रोचकता है इसलिए उनका भी यहाँ वर्णन कर रहा हूँ। यह बात दृष्टि में रख लेनी चाहिए कि सीतापुर से बस लेकर, प्रतापगढ़ में रुककर और रुपयों का प्रबंध करके डिहरी की ओर रवाना होने के बाद मेरे पास 15 दिनों की अवधि में कुल 2 दिन और बचे थे जिसमें डेहरी पहुँचकर बस का कागज तथा सेल्स टैक्स का क्लियरेंस मुझे लेना था। प्रतापगढ़ से डेहरी करीब डेढ़ सौ मील पर अवस्थित है। वहाँ पहुँचने के पूर्व कर्मनाशा में मुझे उत्तर प्रदेश की सीमा लाँघकर बिहार में प्रवेश करना था। कर्मनाशा और डिहरी के बीच के मार्ग पर ही मेरी बस चलनेवाली थी।

बिहार और उत्तर प्रदेश के बीच कर्मनाशा में, जहाँ मुझे बिहार की सीमा में प्रवेश करना था, बाबा के नाम से विख्यात, गाड़ियों को सीमापार करानेवाला अधिकारी ईमानदारी और कड़ाई से नियमपालन के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। ट्रकवाले उससे थर-थर काँपते थे। प्रतिदिन 10-15 ट्रकवालों का वह चलान करता था क्योंकि उनमें कुछ न कुछ दोष निकल ही आते थे। उसके मातहत दो पुलिस दरोगों की ड्यूटी लगती थी। यदि किसी दरोगा को वह घूस लेते पकड़ लेता तो उसी समय उसकी वर्दी उतरवाकर, उसे हथकड़ी पहनाकर अदालत में भिजवा देता था।

मुझे बिहार की कर्मनाशा की सीमा पर, बाबा के विश्राम में जाने की प्रतीक्षा में बिहार में प्रवेश करने को खड़ी लंबी ट्रकों की कतार दिखाई दी। मैंने भी अपनी बस उनके पीछे लगा दी क्योंकि मेरी बस में परमिट संबंधी वह अवैधता तो रह ही गयी थी जिसके कारण मेरा चलान सीतापुर में हुआ था। रात में एक बजे जब बाबा सोने चले गये और दूसरे दरोगा की ड्यूटी लगी तो दनादन ट्रकें उत्तर प्रदेश की सीमा के पार होने लगीं। मेरी बस का नंबर आते ही मैंने बिहार की सीमा में प्रवेश करके जो दरोगा ड्यूटी पर था, उसे क्लर्क की भूल से दिल्ली के स्थान पर डेहरी लिख देने की बात बतायी और

सौ रुपये का नोट पकड़ाते हुए गाड़ी आगे ले जाने की स्वीकृति देने को कहा। उसने सहर्ष रुपये ले लिये और गाड़ी बढ़ाने का इशारा किया। इसी बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने सारे किये-कराये पर पानी फेर दिया। एक ट्रकवाला बनारस के कोढ़िया अस्पताल में दान देने को 150 बोरे गेहूँ ले जा रहा था। ट्रकवाले के पास उत्तर प्रदेश में घुसने का परमिट नहीं था परंतु यह समझकर कि धर्मादे में ये बोरे जा रहे है, उसने उन्हें लाद लिया था। सीमा पर रोके जाने पर गेहूँ धर्मादा देनेवाले ने बड़ी शान से बाबा को पुकार कर धर्मादे की बात कही। बाबा बिस्तर से उठकर आये और ट्रक से गेहूँ की बोरियाँ उतरवा कर ट्रक को जब्त कर लिया। बाबा की खड़ाऊ की आवाज सुनकर दरोगा के होश उड़ गये थे और सौ रुपयों का नोट फेंकते हुए उसने मेरी बस को भी रुकवाने का आदेश दे दिया। मैंने बाबा को अपनी कठिनाई बतायी परंतु वे तो फौलाद के बने थे। क्लर्क की भूल हो, चाहे धर्मादा का गेहूँ हो, उनके लिए नियमों का कठोरता से पालन करना ही एक मात्र धर्म था। अंत में मैंने उनसे निवेदन किया कि मेरे पास गाड़ी पास कराने के लिए समयाभाव है इसलिए इतनी कृपा करें कि भोर में ही मेरी बस के कागज भबुआ की कचहरी में भेज दें ताकि मैं अपराध स्वीकार करके और जुर्माना देकर गाड़ी डिहरी पास कराने को ले जा सकूँ। बाबा ने कृपा की और सुबह होते ही कागज तुरत भिजवा दिये। भबुआ में उसी दिन भारत की प्रधान मंत्री इंदिराजी चुनावसभा का संबोधन करने आयी थीं इसलिए अधिकारीगण कचहरी का नियमित कार्य करने इजलास पर नहीं बैठे थे। मजिस्ट्रेट से चेंबर में मिलकर और कागज पहुँचाने पर भी संध्या समय बड़ी कठिनाई से किसी तरह जुर्माना देकर मैंने गाड़ी रिलीज करवायी। भबुआ कर्मनाशा से करीब 15-20 मील दूसरी ओर है जहाँ से कोई सवारी पकड़ कर मुझे अपनी बस पर लौटना था। इंदिराजी की मीटिंग के कारण सभी गाड़ियाँ भरी हुई थीं। भीड़ के कारण सवारी न मिलने से मैं एक ट्रक पर बहुत अनुनय करके सवार हो गया जो कर्मनाशा की ओर ही जा रहा था जहाँ मेरी बस खड़ी थी। मेरे लिए एक-एक दिन का महत्त्व था। यदि दो दिनों में गाड़ी का परमिट लेकर मैं पटना नहीं पहुच जाता तो परिवहन का परमिट दूसरे को दे दिया जाता, जैसा प्रस्ताव में लिखा गया था। मैं कर्मनाशा जाने को जिस ट्रक पर सवार हुआ था, वह ट्रक अभी आधे रास्ते पर ही था कि कर्मनाशा की ओर से आनेवाली एक बस के ड्राइवर ने पुकार कर कहा कि सीमा पर अभी बाबा बैठा है। बाबा का नाम सुनते ही ड्राइवर ने डर के मारे अपना संतुलन खो दिया और बस उलट गयी।

ग़नीमत थी, मुझे चोट नहीं आयी। अब मैं पैदल कर्मनाशा की ओर चला क्योंकि मुझ पर तो जल्दी पहुँचने का भूत सवार था। दो-तीन मील जाने पर एक खाली जीप खड़ी दिखाई दी और बड़ी अनुनय के बाद उसने मुझे कर्मनाशा पहुँचाया।

नियमों का कठोरता से अक्षरशः पालन करनेवाले बाबा ने बस की मुक्ति का आदेश देखने के बाद कहा कि चूँकि मेरी बस का परमिट डिहरी तक का ही है इस लिए इसे रस्से से बाँधकर दूसरी ट्रक द्वारा डिहरी ले जाना होगा। रास्ते में हर पुलिसथाने के दरोगा से लिखाते जाना होगा कि बस यथार्थ में रस्से से खींचकर ले जाई जा रही है और उनके लिखित प्रमाणपत्र मुझे भेजने होंगे। मरता क्या न करता! बाबा के हर आदेश का पालन करते हुए और रास्ते के हर दरोगा को आधीरात में अपनी नींद से जगाकर प्रमाणपत्र लेते हुए मैं भोर में 3 बजे डिहरी पहुँचा। बीच में कई दरोगों ने तो यह देखने के बाद ही कि गाड़ी रस्सी से बँधी हुई दूसरी गाड़ी द्वारा ले जायी जा रही है या नहीं, मुझे वह प्रमाण-पत्र दिया। इतना था बाबा का आतंक! परंतु अभी एक संकट और मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। डिहरी पहुँचने पर कचहरी के मार्ग में 15-20 लाठीवालों ने बस को रोक लिया और उसमें जमकर बैठ गये। ड्राइवर और मैं हक्का-बक्का होकर भाग्य का यह खेल देख रहे थे। मुझे वह शेर याद आ गया --

किस्मत की ख़ूबी देखिए, टूटी कहाँ कमंद
दो-चार हाथ ज़ब कि लबेबाम रह गया

पटना से बस का परमिट प्राप्त करने के लिए मेरे पास मात्र दो दिन और बचे थे। डिहरी में यदि मैं दिन उगते ही उसी दिन जाकर बस के रजिस्ट्रेशन के कागज नहीं ले लेता तो बस मेरे लिए गले की हड्डी बन जाती। उन लठैतों ने कहा कि आपकी बस एलेक्शन का काम करने के लिए हम लोगों ने सरकार की ओर से जब्त कर ली है। अब मैं क्या करता! वे कोई डाकू तो थे नहीं जिनकी फरियाद थाने में करता। वे तो सरकार के प्रतिनिधि होमगार्ड थे जो बस को सरकारी काम के लिए जब्त कर रहे थे।

मैंने निराश होकर माथा पीट लिया परंतु इसी समय दैव ने पुनः चमत्कारिक ढंग से मेरी वैसी ही सहायता की जैसी लखनऊ में सूरी साहब ऐडवोकेट को कचहरी में भेजकर उसने की थी। एक मजिस्ट्रेट जो कार से कहीं जा रहे थे, होम गार्डों को एक नयी बस में बैठे देखकर रुक गये और पूछने लगे कि क्या माजरा है। मेरी पूरी बात और कठिनाई उनकी समझ में आ गयी और उन्होंने उन

उच्छृंखल होमगार्डों को डाँटते हुए उनकी भीड़ से बस को मुक्त करवा दिया।

इस प्रकार संकट पर संकट पार करते हुए और संस्कृत की इस उक्ति **छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवंति** का अनुभव करते हुए किसी प्रकार रामराम करते मैं अवधि के अंतिम दिन बस के रजिस्ट्रेशन के कागज लेकर पटना पहुँच सका और परिवहन का आदेश-पत्र प्राप्त कर सका।

कार दुर्घटना में मेरे शिशु-पुत्र की रक्षा

मैं एक बार अपनी कार से गया से कोलकाता सपरिवार जा रहा था। मोटर में मेरे चारों पुत्र, एक पुत्री, मेरी पत्नी, एक ब्राह्मणी, तथा मैं था। ड्राइवर नया था। रास्ते में अँधेरा होने लगा और जो ट्रक सामने से आता था, वह अपनी हेडलाइट की रौशनी कम नहीं करता था इसलिए जब तक वह बगल से निकल नहीं जाता, ड्राइवर को आगे कुछ नहीं सूझता था। मैंने एक-दो बार उसका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए उससे कहा कि जब तक सामने से आनेवाला ट्रक बगल से निकल न जाय, कार की गति अत्यंत धीमी कर दिया करे, पर उसने ध्यान नहीं दिया। गाड़ी इतनी खचाखच भरी थी कि उसमें तिल रखने का भी स्थान नहीं था। मैं आगे की सीट पर ड्राइवर की बगल में बैठा था और मैंने अपने सब से छोटे लड़के शरत को, जो उस समय 3-4 वर्ष का था, अपनी गोद में ले रक्खा था। पता नहीं मेरे जी में क्या आया कि स्थान की कमी के कारण पत्नी के, लाख इन्कार करने पर भी, मैंने उस बालक को जबरन पीछे की सीट पर उसकी गोद में डाल दिया।

इसके 5-6 मिनट बाद ही हमारी कार सामने खड़े हुए एक ट्रक से टकरा गयी क्योंकि एक सामने से आते ट्रक की रोशनी के कारण, जब कि आगे का पथ सूझ नहीं रहा था, ड्राइवर तेज गति से ही कार चलाता गया। बगल में आगे एक बिगड़ा हुआ ट्रक खड़ा था जिससे मेरी कार किनारे जाते हुए भी, टकरा गयी और तेज गति होने के कारण बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गयी। मैंने अपने जिस छोटे पुत्र को अपनी गोद से आगे के स्थान से पीछे की सीट पर दे दिया था, मेरे आगे का वह स्थान चूर-चूर हो गया था और मेरे घुटनों पर बहुत तेजी से आघात भी लगा था। **यदि किसी अज्ञात प्रेरणावश मैं उस नन्हें बालक को पीछे की सीट पर 5-7 मिनट पहले ही नहीं दे देता तो पता नहीं उसके साथ कितनी बड़ी दुर्घटना होती**। मोटर का आगे का भाग चूर-चूर हो जाने पर भी हम लोगों को मानसिक आघात के सिवा कुछ विशेष चोट नहीं लगी थी। हम सभी मोटर

से निकल कर बाहर सड़क के किनारे बैठ गये। रात अँधेरी थी और प्रायः 7 बज चुके थे। इतने में एक खाली ट्रक आया जिसे एक दाढ़ीवाला सरदार चला रहा था। उसका पीछे का डाला (माल रखने का स्थान) खाली था। सरदार ने ट्रक रोक दिया और कहा, 'बाबू, यह बहुत भयानक स्थान है, आपके साथ इतने बक्से सामान के हैं और साथ की महिलाएं गहनों से लदी हैं। ज्यों ही गाँववालों को पता लगेगा, आप को लूट लेंगे। प्राणहानि भी हो सकती है। आप मेरे ट्रक में सामान के साथ बैठ जायँ। हम आप लोगों को इस ट्रक द्वारा यहाँ से 20-25 मील दूर पारसनाथ स्टेशन पर पहुँचा देंगे। हम उधर ही जा रहे हैं।' मैं दुर्घटना के आघात से सुन्न हो रहा था। मैंने कहा 'भाई, तुम ठीक कहते हो। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, हमें यहाँ से ले चलो।' सरदार ने और उसके साथ के खलासी ने मिलकर हमारे साथ के भारी-भारी बक्से और अन्य सामान ट्रक पर लाद लिए और हम सभी को सहारा देकर खाली डाले में बैठा लिया। ड्राइवर को टूटी हुई कार के पास रखवाली के लिए छोड़कर हम सब उस ट्रक पर बैठकर आगे रवाना हो गये। पारसनाथ स्टेशन, जहाँ हमें जाना था, उसके बीच रास्ते में मुझे प्यास लगी और मैंने सरदार से ट्रक रोकने को कहा क्योंकि भागते हुए ट्रक में पानी नहीं पीया जा सकता था। ट्रक एक किनारे खड़ा करके सरदार बगल में टहलने लगा। मैं पानी पी चुका तो उसने कहा 'बाबू, अब आप क्या कहते हैं।' मेरा तो यह सुनकर कलेजा धक से रह गया। मैंने सोचा कि कोई लुटेरा भी इतना झाड़-पोंछकर सारा सामान नहीं ले जा सकता था जो सहज ही हमने इस ट्रक पर लदवा दिया है। सरदार दाढ़ी और मूँछ से भयंकर लग रहा था। मैंने सोचा कि इसका पूछने का यही अर्थ है कि या तो आप राजीखुशी अपने सारे सामान और आभूषण आदि छोड़कर ट्रक से उतर जायँ या फिर हमें बल प्रयोग करना पड़ेगा। प्रेमचंदजी की एक कहानी का दृश्य मेरी आखों में घूम गया, जिसमें डाकू पुलिस का वेश बनाकर आये थे, और सुरक्षा का प्रलोभन देकर सेठ का सारा सामान ट्रक पर लादकर ले चले थे और आधे रास्ते में उसे धक्का देकर गाड़ी से उतार कर उसकी जीवनभर की जमापूँजी लेकर चलते बने थे। मैं मन-ही-मन अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। मैं समझ गया कि गाँव के लोगों द्वारा लूटे जाने का भय दिखाकर इसने मेरा सारा सामान आराम से अपनी ट्रक में लदवा लिया है और अब पूछ रहा है कि बाबू, अब आप क्या कहते हैं। अर्थात् आप राजीखुशी उतरते हैं या बल प्रयोग करूँ। परंतु आशा की एक किरण मेरे मन में यही थी कि गाड़ी तो मैंने रुकवायी है। यदि इसका लूटने

का तात्पर्य होता तो यह स्वयं ट्रक रोककर मुझसे यह कहता। परंतु फिर मैंने सोचा कि मनुष्य के मन में लालच तो एक क्षण में आता है। हो सकता है, गाड़ी रुकने पर इसके मन में लालच आया हो। मैंने अत्यंत सतर्कता से उसकी बात का उत्तर दिया, 'मैं क्या कहूँ, जैसा तुम चाहो।' मेरा उत्तर द्वयर्थक था। एक प्रकार से मैं उसकी थाह भी ले रहा था कि मेरी आशंका कहाँ तक सच है। सरदार को शायद मेरे डर का आभास हो गया। उसने कहा, 'बाबू, मै भी बीबी-बच्चोंवाला आदमी हूँ। आपके साथ आपकी पत्नी और बच्चे हैं और इतना भारी सामान है। आप लोग चोट भी खाये हुए हैं। पारसनाथ बहुत छोटा स्टेशन है। वहाँ मुसाफिरखाने में यदि आप लोग उतरेंगे तो वहाँ भी लुट जाने का डर है। या तो आप स्टेशनमास्टर के दफ्तर के सामने रुकें, या मेरे घर चलकर रात बितायें। मेरा घर भी पारसनाथ शहर में ही है।' मैंने राहत की साँस ली और कहा, 'भाई, तुम मुझे स्टेशनमास्टर की आफिस के सामने ही उतार देना।' 'ठीक है,' कहकर सरदार ने गाड़ी चला दी और मुझे पारसनाथ के स्टेशनमास्टर की आफिस के सामने उतार कर हमारा सामान ठीक से हमारी बगल में सजा दिया और उसमें से एक दरी खोलकर बिछा दी कि हम लोग रात बिता सकें। फिर वह बाजार से दवाएं और खाने को पूड़ी-साग भी ले आया। मेरे लाख कहने पर भी उसने भाड़े का एक पैसा भी नहीं लिया और हमें स्टेशनमास्टर को सहेजकर अपना ट्रक लेकर चला गया। जीवन में ऐसे ही प्रसंग हममें मनुष्यता के प्रति आस्था जगाते है नहीं तो रात-दिन अखबारों की खबरों से तो यही लगता है कि चारों और ठग और लुटेरे बसे हुए हैं।

नगरपालिका के चुनाव में मेरी प्राण-रक्षा

जाँको राखे साइयाँ मार सके ना कोय' की सत्यता का मैंने सदैव अनुभव किया है। व्यापार के हानि-लाभ के विषय में तो प्रत्येक व्यक्ति जानता ही है कि वह भाग्य पर कितना अधिक अवलंबित है। जन्म के विषय में भी कोई नहीं जानता कि उसे कहाँ जन्म लेना है, परंतु मृत्यु के विषय में भी यह उतना ही सत्य है अन्यथा सभी धनिक व्यक्ति दीर्घायु होते। मैं बचपन में एक बार कार-दुर्घटना से मरते मरते बचा हूँ। मेरी माता मेरे जीवन के प्रति बहुत आशंकित रहती थी क्योंकि मेरे पहले कई संतानें वह खो चुकी थी और मुझे उसने बड़ी तपस्या करके पाया था। कॉलेज में पढ़ते समय मुझे साँस फूलने की बीमारी बहुत परेशान करती थी। उसमें टी. बी. का भी भ्रम हो जाता था जो

उन दिनों एक असाध्य रोग था तथा मेरी माता की मृत्यु का कारण था। परंतु जिस भाग्य ने इन सब बाधाओं से मुझे पार कर दिया है और जिसने मुझे आज तक जीवित रक्खा है उसीने 1971 में पुनः एक बार मेरी रक्षा की। 14 वर्ष तक भंग रहने के बाद गया की नगरपालिका का चुनाव पुनः होनेवाला था। मैं उसमें अपने वार्ड से प्रत्याशी था और इस बार वास्तविक ही नहीं कानूनन भी अध्यक्ष-पद का दावेदार था। कांग्रेस पार्टी में, जिसका मैं उम्मीदवार था मुझसे अधिक वरिष्ठ और कोई दूसरा व्यक्ति अध्यक्षपद के योग्य नहीं था। जब मैं म्युनिस्पिल कमिश्नर था तब भी जनता की नजर में अध्यक्ष ही समझा जाता था और न्यायालय के एक वाद में तो मुझे डी फैक्टो अर्थात् असली चेयरमैन घोषित भी कर दिया था। मैंने जिन राधामोहन प्रसाद को 14-15 वर्षों पूर्व पिछली, भंग की गयी नगरपालिका में अध्यक्ष बनाया था, वे दिवंगत हो चुके थे अतः वार्डकमिश्नर का चुनाव जीतने के बाद मेरा अध्यक्ष बनना सुनिश्चित था। इस बार कांग्रेस भी नगरपालिका के चुनाव में भाग ले रही थी जिसकी ओर से मैं प्रत्याशी था। उसके विरोध में जनसंघ, जिसका अब भारतीय जनता पार्टी के नाम से रूपांतरण हो गया है, चुनाव लड़ रहा था। मेरी पार्टी चौदह वर्ष की अवधि में छिन्न-भिन्न हो चुकी थी और साहित्यिक, एवं व्यावसायिक कार्यों में लगे रहने से मुझमें अब पुनः नयी पार्टी बनाने का न तो उत्साह था न समय। कांग्रेस सभी स्थानों पर शासन कर रही थी। उसकी विजय होने पर स्वभावतः मैं अध्यक्ष बनता। मैंने अपनी उम्मीदवारी का पर्चा दाखिल करते समय अपने एक मित्र सोहनलाल का भी वैकल्पिक पर्चा दाखिल कर दिया था कि यदि किसी कारणवश मेरा पर्चा निरस्त भी हो जाय तो कांग्रेस की ओर से कोई न कोई व्यक्ति चुनाव में अवश्य खड़ा रहे। परंतु कांग्रेस के चुनाव में आने का अर्थ था नगरपालिका के चुनाव में पूरी राजनीतिक कूटनीति का प्रवेश, जो जातीयता पर आधारित थी। एक मारवाड़ी अध्यक्षपद पर आसीन हो जाय, यह कैसे संभव होता! मेरे प्रतिद्वंद्वी और पूर्व नगरपालिका की बैठकों के सभापति नारोबाबू ने फिर एक बार अध्यक्षपद के लिए चाल चलनी प्रारंभ कर दी। इस बार कांग्रेस की प्रांतीय जातीयतावादी राजनीति का उन्हें पूर्ण समर्थन था जहाँ जाति के नाम पर मेरा कोई सहायक नहीं था। मारवाड़ी होने का लेबुल तो मुझ पर लगा ही था। तत्कालीन राज्य सरकार के मंत्री रामाश्रय राय, जिला कांग्रेस के अध्यक्ष तथा अन्य व्यक्तियों ने योजना बनाकर मुझे सर्किट हाउस में बुलाया तथा कहा कि कांग्रेस की टिकट आपके वार्ड से आपके वैकल्पिक उम्मीदवार सोहनलाल

को देने का निश्चय किया गया है क्योंकि आप तो इतने लोकप्रिय है कि किसी भी दूसरे स्थान से जीत सकते हैं, परंतु सोहनलालजी के रूप में हमें एक अतिरिक्त कांग्रेसी सदस्य नगरपालिका में मिल जायगा क्योंकि वह केवल इसी वार्ड से जीत सकते हैं। मैं उन लोगों की मंशा समझ गया। मैंने किसी दूसरे वार्ड से खड़े होने से साफ इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप मेरे वैकल्पिक उम्मीदवार को, जिसे मैंने अपनी ओर से खड़ा किया था, मेरे वार्ड से मेरे स्थान पर कांग्रेस की ओर से उम्मीदवार घोषित कर दिया गया। मैंने कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र देकर स्वतंत्र रूप से अपने उसी वार्ड से चुनाव लड़ने का निश्चय किया जहाँ से मैंने कांग्रेसी उम्मीदवार के रूप में अपना पर्चा दाखिल किया था। मुझे अब चुने जाने से अधिक दिलचस्पी कांग्रेसी उम्मीदवार के रूप में घोषित उस उम्मीदवार को हराने में थी जिसे मैंने अपने विकल्प के रूप में अपनी ओर से खड़ा किया था और जो कमिश्नर बनने के प्रलोभनवश मुझे धोखा देकर कांग्रेस की कूटनीति का साधन बन गया था। मेरी विशेष दिलचस्पी न रहने का एक कारण यह भी था कि कांग्रेस और जनसंघ, दोनों के उम्मीदवार प्रत्येक वार्ड से खड़े थे और उन्हीं में से किसी एक को चुने गये कमिश्नरों के वोट से नगरपालिकाध्यक्ष चुना जाना था। अपनी पार्टी के अभाव में अब मैं जीत कर भी एक स्वतंत्र म्युनिसिपल कमिश्नर मात्र रहनेवाला था और पहले की तरह, कमिश्नर मात्र रहने पर भी पूरी नगरपालिका का शासन मेरे हाथों में नहीं रहनेवाला था। कुछ भी हो, मुझे चुनाव तो लड़ना ही था। महिला कालेज के अहाते में दो मतदान केंद्र थे। उस अहाते मैं प्रवेश करने के लिए बड़ा फाटक था जो बंद था और जिस पर एक बंदूकधारी संतरी बैठा था। फाटक किसीके प्रवेश के समय खोल दिया जाता था। मैं प्रत्याशी के अधिकार से फाटक के अंदर की चुनाव-व्यवस्था देख रहा था जब कि मेरे मित्र प्राचार्य विश्वनाथ सिंह का पुत्र सुमन, जो चुनावकार्य में मेरी सहायता कर रहा था, फाटक के बाहर खड़ा था। अचानक फाटक खुला और गया के एक मजिस्ट्रेट ठाकुर साहब जिनको चुनाव के निरीक्षण की ड्यूटी दी गयी थी, एक जीप पर आधे दर्जन आर्म्सगार्ड के साथ अंदर आये। उन्होंने आते ही जीप से उतरकर मुझसे कहा कि पता चला है कि आप पर प्राणघातक आक्रमण होनेवाला है अतः मैं आपकी सुरक्षा के लिए आया हूँ। मैंने सपने में भी यह कल्पना नहीं की थी। मैंने हँसते हुए उनसे कहा कि आप निश्चिंत होकर जायँ, मुझे किसी प्रकार का खतरा नहीं है। आप मेरी चिंता छोड़कर नगर के दूसरे चुनाव-केंद्रों की व्यवस्था देखें। मेरे जोर देने पर वे चले गये। उनकी जीप के जाने के बाद मैंने देखा कि कांग्रेस की ओर से

बोगस अर्थात् छद्म वोट गिराने की चेष्टा हो रही है। मैंने चुनाव अधिकारी का ध्यान उस ओर खींचा तो तीन-चार गुंडे जो वहाँ खड़े थे, चुनाव-अधिकारी से बोले 'गुलाबजी इस अहाते के अंदर नहीं रह सकते, इन्हें यहाँ से बाहर जाने को कह दिया जाय।' मैंने कहा कि मैं उम्मीदवार हूँ अतः मुझे मतदान केंद्र में उपस्थित रहने का पूरा अधिकार है। चुनाव-अधिकारी गुंडों से स्वयं भयभीत था। उसने मुझे फाटक से बाहर चले जाने का आदेश दे दिया। जब मैं उस आदेश के अनुसार फाटक की ओर बढ़ा जा रहा था तो उन गुंडों में से एक ने कहा 'अब बाहर सड़क पर निकलने पर पता चलेगा कि उम्मीदवार का क्या अधिकार है और उसकी क्या गति होती है।' मैं उनके रुख से समझ गया कि वे बाहर निकलते ही मुझपर आक्रमण करेंगे। बाहर उनके मित्रों की टोली मुझे समाप्त करने को एक जीप पर बैठी थी जिनके पास रिवाल्वर तथा अन्य अस्त्र थे। मैंने चुनाव-अधिकारी से कहा कि बाहर निकलने पर मेरे प्राण जाने का संकट है, मेरी सुरक्षा का जिम्मा कौन लेगा। वह भी स्थिति ताड़ गया था परंतु गुंडों के भय से या अपनी मूर्खता से नियम का उल्लंघन करता हुआ बोला 'मैं यह सब कुछ नहीं सुनना चाहता हूँ। आपको फाटक के बाहर जाना ही होगा।' विवश होकर मैं ज्यों-ज्यों फाटक की ओर बढ़ रहा था, वे गुंडे हर्षोन्मत्त होकर उछल रहे थे। फाटक पर तैनात सिपाही ने बाहर खड़ी जीप देख ली थी और उस के आरोहियों की लाठी और रिवाल्वर पर भी उसकी दृष्टि जा चुकी थी। वह भी मेरे प्राणों का संकट भाँप चुका था। उसकी सहानुभूति मेरे साथ थी। वह जानता था कि ज्यों ही मेरे बाहर चले जाने पर वह फाटक बंद करेगा, जीपवाले व्यक्ति मुझे जीवित नहीं छोड़ेंगे। पर वह विवश था। वे गुंडे भी मेरे पीछे-पीछे उछलते हुए फाटक की ओर बढ़ रहे थे। फाटक के बाहर अनुग्रह कालेज के प्रिंसिपल, मेरे घनिष्ठ मित्र का पुत्र सुमनसिंह मेरी सहायता को खड़ा था। आज वह एक उच्च पद पर आसीन है। मुझ पर प्राणघातक हमला होने पर राजपूती मर्यादा के अनुसार मुझे बचाने में वह भी अपने प्राण दे देता, इसमें संदेह नहीं है। सहसा फाटक के पास पहुँचने पर ज्योंही मेरी दृष्टि पीछे की ओर मुड़ी, मैंने उसी अहाते के एक अन्य मकान में सामने बैठे हुए अपने एक प्रोफेसर मित्र को देखा। उनका मकान महिला कालेज के अहाते में ही था जिसमें वह रहते थे। मैंने चुनाव अधिकारी से, जो मुझे फाटक से बाहर करने को मेरे साथ-साथ चल रहा था, कहा, 'सामने मेरे मित्र के मकान में जाने से आप मुझे नहीं रोक सकते हैं। वह आपके चुनाव-केंद्र से भिन्न है। मैं वहीं जा रहा हूँ।' मेरे यह कहते ही फाटक के सिपाही की जान-में-जान आयी और उसने कहा,

'हाँ, हाँ, बाबू, आप उधर ही जायँ।' बिना चुनाव-अधिकारी के उत्तर की प्रतीक्षा किये मैं तेजी से फाटक की विपरीत दिशा में अपने प्रोफेसर मित्र के घर पर लपकता हुआ चला गया और उनकी बगल में जाकर बैठ गया। मतदानकेंद्र से मेरे हटते ही कांग्रेस की ओर से दनादन नकली वोट पड़ने लगे। थोड़ी देर में मजिस्ट्रेट ठाकुर बाबू आर्म्सगार्ड के साथ पुनः आ पहुँचे क्योंकि उन्हें मेरे कथन पर पूरा विश्वास नहीं हुआ था। उनके आते ही बदमाशों की जीप भाग निकली। वे अंदर आये और उन्होंने मेरे कांग्रेसी प्रतिद्वंद्वी सोहनलाल को और उसके पुत्र को उनकी अवैध हरकतों के कारण गिरफ्तार करके अपनी जीप में बैठा लिया। उनके पास मतपत्रों का पूरा बंडल भी प्राप्त हो गया। मजिस्ट्रेट ठाकुरप्रसाद जीप के बदमाशों को तथा अहाते के अंदर मुझे धमकी देनेवाले अन्य बदमाशों को तो नहीं पकड़ सकते थे परंतु अपना आक्रोष उन्होंने उस कांग्रेसी प्रतिद्वंदी पर निकाला जो इस षड़यंत्र का कारण था और जिसने मेरे साथ विश्वासघात किया था। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे कहने के बावजूद वे सर्तक थे अतः वे घूम कर आ गये थे। यदि मैं बाहर निकलता तो मेरे मित्र प्राचार्य विश्वनाथ सिंहजी का पुत्र सुमन, आधे दर्जन शस्त्रधारी गुंडों से, सिवा अपने प्राणों की बलि देने के, मेरी क्या रक्षा कर सकता था! यह भगवान की कृपा थी जिसने कुछ क्षण पहले मुझे अपने मित्र प्रोफेसर साहब को अपने भवन के द्वार पर बैठे हुए दिखा दिया, अन्यथा मैं दूसरे दिन के दैनिक पत्रों की मात्र शोकजनक सूचना बनकर रह जाता, इसमें कोई संदेह नहीं है।

बाद में मैंने प्रोफेसर साहब के मकान के दूसरे द्वार से बाहर जाकर जनसंघ के प्रत्याशी को सावधान किया और कांग्रेस की ओर से गिरनेवाले नकली वोटों को रुकवाने की चेष्टा की। कांग्रेसी प्रत्याशी तो थाने में रोक ही लिया गया था। परिणामस्वरूप मैं तो कुछ वोटों से पराजित हो गया परंतु कांग्रेस का वह प्रतिद्वंद्वी भी जीत नहीं पाया और इस प्रकार मेरे प्राणों की रक्षा तो भगवत् कृपा से हो ही गयी, मुझे धोखा देकर चुने जाने की आकांक्षा रखनेवाले सोहनलाल की पराजय से मेरी प्रतिष्ठा भी बच गयी। दोनों पार्टियों के बोगस वोटों की तुलना में मेरे वोटों की संख्या मात्र एक सौ कम थी। यदि बोगस बोट नहीं पड़ते तो मेरा चुना जाना निश्चित था।

बाद में उसी दिन संध्या समय मैंने थाने में जाकर अपने उस कांग्रेसी प्रतिद्वंद्वी और उसके पुत्र को भी मुक्त कराया और उन पर लगे अभियोगों को भी कह-सुनकर रफा-दफा करवा दिया। मैं चुनाव के संघर्ष को चुनाव तक ही सीमित

रखना चाहता था। सोहनलाल बाद में शर्मिंदा भी हुआ और अपने जीवन के अंत तक मेरा मित्र बना रहा।

चमत्कारों की इस शृंखला में एक पहले की घटना और याद आ रही है। मैं अपने भवन के हॉल में एक मित्र के साथ गलीचे पर बैठा भोजन कर रहा था। न जाने क्यों मैं अकारण थाली उठाकर बहुत पीछे एक दूसरे स्थान पर ले जाकर भोजन करने लगा। मेरा मित्र भी अपनी थाली उठाकर मेरी बगल में आ गया। हम लोगों के हटने के दो-तीन मिनट बाद ही, जबकि हम भोजन कर ही रहे थे, हॉल की छत से सीमेंट का बहुत बड़ा थक्का छत से उखड़कर, जहाँ मैं पहले बैठा था, वहीं गिरा। यदि मैं वहाँ से नहीं हटता तो वह मेरे सिर पर गिरता। भगवान ने ही वहाँ से हटने की प्रेरणा देकर मेरे प्राणों की रक्षा की।